tyok; ifjoru vkj Hkkjr

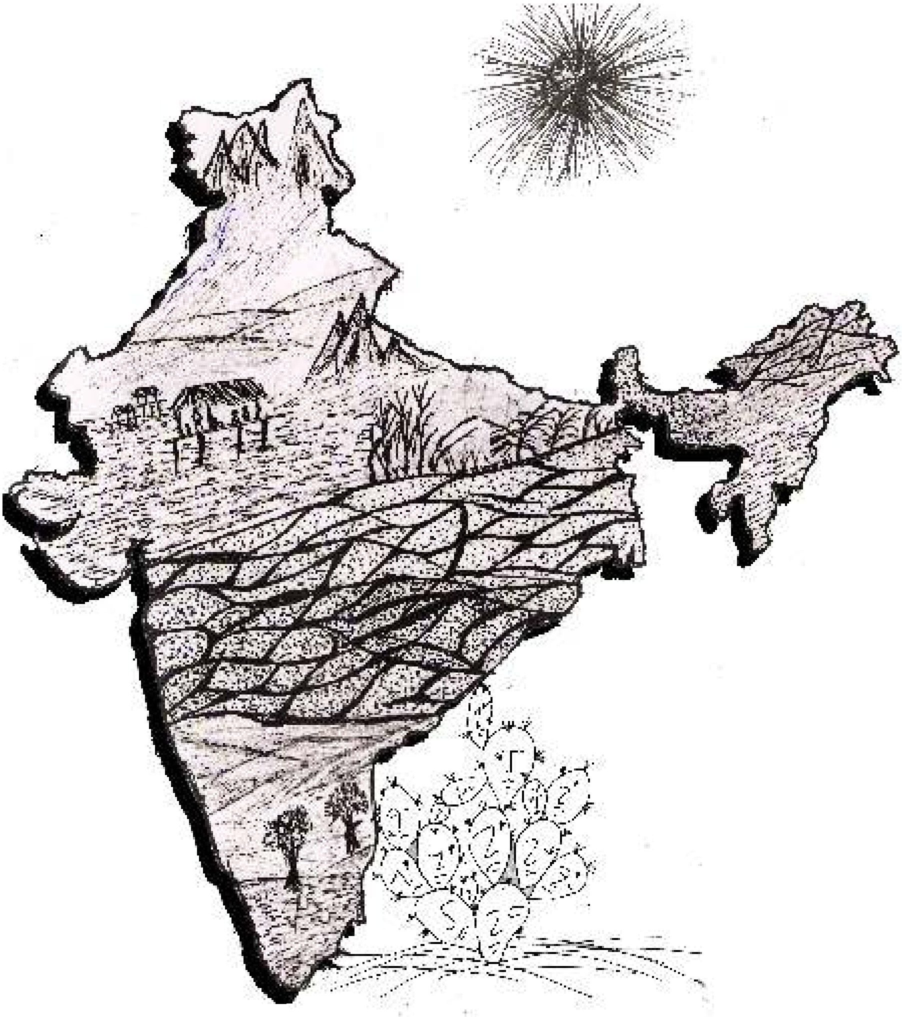

जलवायु परिवर्तन और भारत

जलवायु परिवर्तन और भारत

नवम्बर 2009

परिकल्पना : शरद जोशी

आलेख : अजय कुमार झा

संयोजन : विनोद कोष्टी

आवरण व स्वरूप : रजनीश श्रीवास्तव

प्रकाशक :

पैरवी

जी-30, प्रथम तल, लाजपतनगर-3, नई दिल्ली-110024

दूरभाष : 011-29841266, 65151897

ईमेल : pairvidelhi@rediffmail.com, pairvidelhi1@gmail.com

वैबसाइट : www.pairvi.org

इस पुस्तिका के कुछेक अंश 'योजना' के जून 2008 अंक से एवं गोरखपुर एनवायरन्मेंटल एक्शन ग्रुप द्वारा प्रकाशित 'जलवायु परिवर्तन एवं कृषि' से लिये गए हैं।

विषय-वस्तु

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन क्या है ? ...7

क्या है ग्रीन हाऊस गैस ? ...7

कहाँ से हो रहा है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन ? ...8

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण ...9

वैश्विक तपन (Global Warming) के दुष्परिणाम ..10

जलवायु परिवर्तन की पृष्ठभूमि और उत्सर्जन ..11

भारत : जलवायु परिवर्तन का मुद्दा और चुनौतियाँ ..13

जलवायु परिवर्तन को रोकने के अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक प्रयास ..17

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और समझौता वार्ता ..21

जलवायु परिवर्तन पर विभिन्न देशों की प्रतिबद्धता ..22

अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं में भारत की स्थिति ..23

जलवायु परिवर्तन पर भारत की तैयारी ..25

नीति-निर्धारकों से हमारी अपेक्षाऐं ..27

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन की आहट से चौंकने का वक्त अब बीत चुका है। आईपीसीसी और अन्य वैज्ञानिकों द्वारा की गई भविष्यवाणियाँ और गणनाऐं अब करीब-करीब सिद्ध हो चुकी हैं। जलवायु परिवर्तन अब एक वास्तविकता बन चुका है और यह भी स्पष्ट हो चुका है कि इसका सर्वाधिक प्रभाव दक्षिण-पूर्व एशियाई व अफ्रीकी देशों पर परिलक्षित होगा। अगर अब भी मानव ने प्रकृति के साथ छेड़छाड़ को बंद नहीं किया तो प्रकृति के न्याय की बर्बरता का अनुमान लगाना मुश्किल हो जाएगा।

सारा विश्व कोपेनहेगन में इस समस्या से निपटने के तरीके ढूंढने में लगा हुआ है। कहते हैं - ''जैसी करनी वैसी भरनी''। पर विडम्बना यह है कि जिन लोगों की यह करनी है वह तो मौज कर रहे हैं और इसकी भरनी उन लोगों को करनी पड़ रही है जिनका कहीं कोई सक्रिय योगदान नहीं रहा है। ऐसे में यह ज़रूरी है कि जलवायु परिवर्तन से जुड़े मुद्दे व परिचर्चाओं को उन लोगों तक लेकर जाया जाए जो हमेशा से कुछ मुट्ठी भर लोगों की मनमानी का ख़ामियाज़ा भुगतते आ रहे हैं। यह पुस्तिका ऐसे ही प्रयासों में से एक है जिसका उद्देश्य न सिर्फ जानकारी प्रदान करना है बल्कि एक ऐसी बहस को जन्म देना है जिससे कुछ मुट्ठी भर लोगों की मनमानी बंद की जा सके।

जलवायु परिवर्तन क्या है ?

जब से इस धरती का निर्माण हुआ तभी से इसका एक अपना जलवायु तंत्र है। हर स्थान की अपनी एक निश्चित जलवायु होती है, जिसे वहाँ की वर्षा, धूप, हवा, तापमान, आर्द्रता आदि मिलकर निर्धारित करते हैं। जलवायु में कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है, जिससे कभी ठण्ड ज़्यादा तो कभी गर्मी ज़्यादा पड़ती है और धरती पर रहने वाले जीव-जन्तु उससे अपना सामंजस्य बनाते रहते हैं। पिछले 100—150 वर्षों से जलवायु में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहा है जिसकी वजह से बहुत से पेड़-पौधे और जीव-जन्तु इससे अनुकूलन नहीं बैठा पा रहे हैं। इसकी वजह वैज्ञानिकों ने ग्रीन हाऊस गैसों में बढ़ोत्तरी बताया है।

क्या है ग्रीन हाऊस गैस ?

हमारा वातावरण अनेक प्रकार की गैसों से मिलकर बना है। इसमें 1 प्रतिशत अन्य गैसों में ग्रीन हाऊस गैसें शामिल हैं जिनमें कार्बन डाई-ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, फ्लोरोकार्बन आदि हैं। यह ग्रीन हाऊस गैसें पृथ्वी के लिए कवच के समान कार्य करती हैं। हमारी धरती के ऊपर ग्रीन हाऊस गैसें एक परत के रूप में होती हैं जो धरती को गर्म रखती हैं और सूर्य की ऊर्जा को रोककर वापस धरती पर भेजती हैं, जिससे गर्मी बनी रहती है। ये गैसें धरती की प्राकृतिक तापमान नियंत्रक हैं। अगर ये न होतीं तो हमारी धरती का तापमान जितना आज है उससे 40 डिग्री सेंटिग्रेड से भी ज़्यादा ठण्डा होता।

आज अनेक अप्राकृतिक मानवीय गतिविधियों के कारण इन ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन बहुत बढ़ गया है जिससे वातावरण में मौजूद इसकी तह मोटी होती जा रही है और प्राकृतिक ग्रीन हाऊस प्रभाव नष्ट हो रहा है, धरती पर गर्मी बढ़ रही है तथा जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

कहाँ से हो रहा है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन ?

ग्रीन हाउस गैसों में बढ़ोत्तरी के लिए मनुष्य ज़िम्मेदार है।

- सबसे ज़्यादा उत्सर्जित हो रही कार्बन डाई-ऑक्साइड के मुख्य स्रोत हैं :
  - जंगलों का कटना
  - कृषि अवशेषों का जलाना
  - ज़मीन के उपयोग में बदलाव
  - बढ़ता शहरीकरण
  - उद्योगों से निकलता धुँआ
  - जीवाश्म ईंधन (फॉसिल फ्यूल) के जलने से, जैसे-कोयला, डीजल आदि
- मीथेन का उत्सर्जन घरेलू जानवरों, जैसे गाय, बकरी, सुअर, भैंस, ऊँट व भेड़, द्वारा होता है। ये जानवर अपने चबाने की प्रक्रिया में मीथेन पैदा करते हैं। धान के खेतों में भरे पानी से तथा कूड़ा-करकट के एकत्रीकरण से भी मीथेन निकलती है।
- खेतों में नाइट्रोजन की अत्यधिक मात्रा और रासायनिक खाद (फर्टिलाइज़र) के प्रयोग में अनियमितताओं की वजह से इन गैसों का उत्सर्जन बढ़ गया है। पशुशाला के रखरखाव व गोबर आदि के कुप्रबंधन से भी नाईट्रस ऑक्साइड गैस का उत्सर्जन होता है। साथ ही मनुष्यों के मल-मूत्र विसर्जन हेतु बनाए गए सीवेज से भी इसका उत्सर्जन होता है।
- एयरकन्डीशनर और रेफ्रिजरेटर आदि के इस्तेमाल से फ्लोरोकार्बन का उत्सर्जन तेजी से बढ़ रहा है।

> 1880 के बाद से पृथ्वी के औसत तापमान में 0.8 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। नासा के गोड़ाई इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस स्टडीज के मुताबिक इसमें सबसे ज्यादा वृद्धि हाल के दशकों में हुई है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण

प्राकृतिक रूप से पृथ्वी की जलवायु में कुछ न कुछ परिवर्तन आता रहता है परन्तु आज सारी दुनिया इस बात से चिंतित है कि जलवायु परिवर्तन में तेजी से परिवर्तन हो रहा है और वह भी मानवीय गतिविधियों के कारण। प्रकृति के नियमों में मानवीय हस्तक्षेप ने प्रकृति को और भी उग्र बदलाव हेतु तैयार कर दिया है। जलवायु परिवर्तन के पीछे मानवजनित कारणों में से प्रमुख इस प्रकार हैं –

अंधाधुंध औद्योगीकरण : प्रदूषण फैलाने में आज ये सबसे अग्रणी है। औद्योगिक कचरे के निस्तारण की कोई सटीक योजना न होने की वजह से व अत्यधिक कोयले व बिजली की खपत से ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि हो रही है।

अत्यधिक ऊर्जा की खपत : हमारी वर्तमान विकास प्रणाली उन ईंधनों पर टिकी है जो हमें तेल, प्राकृतिक गैस एवं कोयले में प्राप्त होती है। बिजली की मांग में अनवरत बढ़ोत्तरी से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता जा रहा है जो कि एक प्रमुख चुनौती है।

वनों व पेड़-पौधों का कम होना : पुराने जंगल वायुमण्डल से कार्बन डाई-ऑक्साइड अवशोषित कर जलवायु परिवर्तन के लिए ज़िम्मेदार ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन घटाने में मददगार होते हैं। अंधाधुंध वनों की कटाई से न केवल पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ा है बल्कि वनोपज पर निर्भर रहने वाले स्थानीय समुदाय के लिए आजीविका का संकट पैदा हो गया है।

जनसंख्या वृद्धि : बढ़ती जनसंख्या के कारण आज सीमित प्राकृतिक संसाधन का दोहन बिना सोचे-विचारे किया जाने लगा है। बढ़ती जनसंख्या के रहने व पेट भरने के लिए भूमि के उपयोग में निरंतर बदलाव हो रहे हैं जो कि हानिकारक हैं।

भूमि के उपयोग में बदलाव : आज अनेक स्थानों पर जंगलों को काटकर वहाँ फसलों का उत्पादन करना अथवा खेती योग्य ज़मीनों को रिहायशी इलाकों में तब्दील करने की प्रक्रिया जोरों पर चल रही है। जंगलों के कटने या शहरीकरण से कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है।

वैश्विक तपन (Global Warming) के दुष्परिणाम

पिछले एक दशक में मानवजनित ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर जो अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तन हो रहा है उसका पारिस्थितिकी और जीव समुदाय तथा विश्व की सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। क्षेत्रीय स्तर पर मौसम में जो उग्र बदलाव आ रहा है, उसको देखते हुए वैश्विक तपन समस्त मानवता के लिए काफी तबाही मचा सकती है। 1995 से 2006 की अवधि के 12 में से 11 वर्षों को, 1850 के बाद से, सबसे गर्म 11 वर्षों में शीर्ष पर रखा जा सकता है। 2003 में गर्म हवाओं के कारण भारत में 1500 लोग मारे गए। आर्कटिक के शाश्वत ध्रुवीय हिमशिखरों का तेजी से लुप्त होना और हिमालयीन हिमनदों के सिकुड़ते जाने की घटनाऐं वैश्विक तपन के असाधारण लक्षणों को और भी विश्वसनीय बनाती जा रही हैं। विश्व के अनेक पर्वतीय हिमनदों में से अधिकांश जलवायु के गर्म होने पर हमारी प्रमुख नदियों का पेट भरने का काम करते हैं। हिमनदों के ह्रास से नदी जल का ग्रीष्मकालीन स्रोत समाप्त हो जाएगा। हिमालयीन पर्वतीय क्षेत्रों के दो हिमनद, जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले एक दशक में सिकुड़ कर छोटे होते जा रहे हैं। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण के एक अध्ययन के अनुसार उत्तरांचल के विशालतम हिमालयीन हिमनदों में से एक गंगोत्री हिमनद, वर्तमान में 19 मीटर प्रतिवर्ष की औसत दर से सिकुड़ता जा रहा है। तटीय क्षेत्रों के कुछ निकटवर्ती हिमनदों को छोड़कर हिमनदों के सिकुड़ने की अलौकिक घटना अब अधिक लौकिक होती जा रही है।

हिमशिखरों व हिमनदों के पिघलने से समुद्र की सतह की ऊँचाई बढ़ेगी जिसके फलस्वरूप पूरे विश्व में बाढ़ आने का ख़तरा बढ़ जायेगा। कई सारे छोटे द्वीप वाले देश हमेशा के लिए जलमग्न हो जाऐंगे। वैश्विक तपन के कारण समुद्र की सतह की ऊँचाई में वृद्धि से दुनिया भर के लगभग 40 प्रतिशत लोंगों का जीवन दांव पर लगा हुआ है। पूरे विश्व में समुद्र का औसत जलस्तर प्रतिवर्ष 1 से 2 मिलीमीटर की औसत दर से बढ़ रहा है और यह क्रम पिछले करीब 100 वर्षों से ज़ारी है। समुद्र स्तर में इस वृद्धि से तटीय क्षेत्रों के निचले इलाके तटवर्ती दलदल और जलीय क्षेत्र में डूब जाऐंगे, समुद्री किनारे क्षारत हो जाऐंगे, बाढ़ों में वृद्धि होगी और खाड़ियों, जल भरण चट्टानों अथवा मृदा और अंतर्देशीय नदियों की लवणता में वृद्धि हो जाएगी।

पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि से वर्षा की मात्रा और प्रतिमान में उल्लेखनीय परिवर्तन होने की आशंका है जिसके परिणामस्वरूप जलवायु संबंधी घटनाओं की संख्या एवं उग्रता में वृद्धि होने की संभावना बढ़ जाएगी। बाढ़, सूखा, गर्म हवाऐं (लू), चक्रवात, तूफान और झंझावात जैसी आपदाऐं जल्दी-जल्दी आने लगेंगी और उनमें विकटता भी बढ़ जाएगी। वैश्विक तपन से जो अन्य विपरीत प्रभाव हो सकते हैं वे हैं – कृषि उपज में परिवर्तन, गर्मियों में जलधारा में कमी, प्रजातियों का लोप और रोगवाही जीवाणुओं के प्रकार व मात्रा में वृद्धि। भारत में गेहूँ की पैदावार में गिरावट पहले से ही चली आ रही है। जलवायु परिवर्तन के अलावा इसका अन्य कोई कारण नहीं है।

वैश्विक तपन प्रत्येक महाद्वीप की भौतिक और जैविक प्रणालियों को प्रभावित कर रहा है। एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन में चेतावनी दी गई है कि वैश्विक तपन के कारण वर्ष 2050 तक पृथ्वी पर पाए जाने वाले पशुओं और पौधों में से एक चौथाई लुप्त होने के कगार पर जा सकते हैं। हाल के दिनों में अनेक नई-नई बीमारियाँ होने लगी हैं क्योंकि धरती के वायुमण्डल के बढ़ते तापमान में अनेक कीटाणु अधिक सक्रिय और प्रभावी हो चले हैं। वे गर्म वातावरण में तेजी से पनप भी रहे हैं। वैश्विक तपन से आर्द्रता का जो स्तर बढ़ा है उससे मच्छरों का प्रकोप भी बढ़ा है क्योंकि मच्छर गर्म वातावरण में ज़्यादा तेजी से बढ़ते हैं। वनों, खेतों और शहरों में नए-नए कीड़े-मकोड़ों का आतंक बढ़ सकता है। मच्छरजनित रोग वैश्विक तपन के ही नतीजे हैं।

जलवायु परिवर्तन की पृष्ठभूमि और उत्सर्जन

जलवायु परिवर्तन को इस सदी में सतत विकास की गंभीरतम चुनौती में से माना जा रहा है। प्रकृति के विनाश पर खड़ी की जाने वाली सुख-सुविधाओं व आरामदेह जीवनशैली के लोभ से उपजी इस समस्या के दुष्प्रभाव कमोबेश सभी देशों, सरकारों और समुदायों पर आशातीत हैं। इसके निवारण के उपाय प्रचलित विकास की अवधारणा से परे जीवनशैली, सोच व विकास के प्रारूप में आमूलचूल परिवर्तन की माँग कर रहे हैं। यह बहुत हद तक संभव है कि इसके प्रभाव न सिर्फ प्रत्यक्ष रूप से

वातावरण, खाद्य व जल सुरक्षा, ऊर्जा पर होंगे बल्कि इसके परोक्ष प्रभाव मानव स्वास्थ्य, ग़रीबी और अर्थव्यवस्था पर भी होंगे। विकासशील देशों में, जहाँ अशक्त अर्थव्यवस्था और संसाधन की कमी से लोगों की अनुकूलन क्षमता न्यूनतम है, गंभीर प्रभावों की आशंका है। यहाँ जलवायु परिवर्तन की गंभीरतम घटनाओं जैसे कि बढ़ते तापमान से होने वाली मृत्यु और बीमारियाँ, बाढ़ व अतिवृष्टि से क्षति व अकाल के काफी तेज़ गति से बढ़ने की संभावना है।

आई.पी.सी.सी. की चौथी रिपोर्ट (2007) ने यह आशंका ज़ाहिर की है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से सदी के अंत तक पृथ्वी की जलवायु का तापमान 2–4.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। इससे होने वाले बदलाव खाद्य व जल सुरक्षा को सर्वाधिक प्रभावित करेंगे। ऐसा माना जा रहा है कि दक्षिणपूर्व एशियाई देश, अफ्रीका और लातिन अमेरिका, जहाँ अधिकतम जनसंख्या कृषि पर आश्रित है, सर्वाधिक प्रभावित होंगे। समुद्री जल स्तर बढ़ने से द्वीप देशों की स्थिति और भी गंभीर होगी और मालदीव जैसे कई देश पूरी तरह जलमग्न हो जाऐंगे। यह आशंका है कि जलवायु के तापमान में 1 से 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि मात्र से ही ऊष्णकटिबंधीय देशों में खाद्यान्न के उत्पादन में भयंकर गिरावट आएगी जिससे भूख व जलजनित बीमारियों में कई गुना वृद्धि होगी। अकाल व बाढ़ के कारण हिमालय व एन्डीज़ के क्षेत्रों में रहने वाले लाखों लोगों को कई तरह के संकट का सामना करना पड़ेगा। समुद्रतटीय इलाकों व देशों में मानव, वानिकी व जैव-विविधता में अत्यधिक ह्रास के भी संकेत हैं। जलवायु परिवर्तन के मद्देनज़र सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति काफ़ी दुरूह हो सकती है।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के सबसे बड़े स्रोत कोयले से ऊर्जा (60 प्रतिशत), वनों का ह्रास (18 प्रतिशत), खेती (14 प्रतिशत), औद्योगिक प्रक्रियाऐं (4 प्रतिशत) और अपशिष्ट (4 प्रतिशत) हैं। विकासशील देशों ने, जहाँ विश्व की 80 प्रतिशत से अधिक आबादी निवास करती है, 1751 से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जित भंडार में सिर्फ 20 प्रतिशत का योगदान किया है। बड़े विकासशील देशों जैसे कि भारत, चीन, ब्राजील व दक्षिण कोरिया अभी भी प्रति व्यक्ति उत्सर्जन में विकसित देशों से कई गुना पीछे हैं। विश्व बैंक के अनुसार जहाँ विकसित देशों में प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन 13 टन है, विकासशील देशों में यह 3 टन से भी कम है। अमरीका में प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन भारत की तुलना में 20 गुना ज़्यादा है। विश्व में सिर्फ 15 प्रतिशत जनसंख्या के साथ अमीर देश कार्बन डाइ-ऑक्साइड के 47 प्रतिशत से अधिक उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं।

भारत : जलवायु परिवर्तन का मुद्दा और चुनौतियाँ

विकासशील देश होने के नाते अर्थव्यवस्था पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव भारत में गहन चिंता का विषय है। देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कृषि पर आश्रित है जो कि जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। साथ ही विकासशील देश होने के नाते भारत में ऊर्जा की खपत और मांग निरंतर बढ़ती ही रहेगी और जलवायु परिवर्तन के ख़िलाफ किए जाने वाले प्रयास इसके विकास और प्रगति में अवरोधक होंगे। हालांकि ऐसा माना जा रहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र (Service Sector) की प्रमुखता के कारण शायद यहाँ उत्सर्जन में बहुत वृद्धि नहीं होगी परंतु यह भी सच है कि देश की आधी जनसंख्या को अभी भी ऊर्जा व बिजली, पानी, शिक्षा व अन्य मूलभूत सुविधाऐं उपलब्ध नहीं हैं और इसलिए ऊर्जा की मांग बढ़ती ही रहेगी। कई क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव गंभीर होंगे।

कृषि

कृषि अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रभाव होगा। भारत की जनसंख्या का 55–60 प्रतिशत अभी तक कृषि पर आधारित है। हालांकि अर्थव्यवस्था में इसका योगदान निरंतर कम (2007–08 में सिर्फ 17.8 प्रतिशत) होता जा रहा है। कई कारणों से भारतीय कृषि में गिरती हुई उत्पादकता से हम हाल के वर्षों में जूझते रहे हैं। तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस से अधिक वृद्धि होने पर कृषि की सकल राजस्व में 9 प्रतिशत की कमी हो सकती है और 3.5 डिग्री सेल्सियस से अधिक वृद्धि की परिस्थिति में यह कमी 25 प्रतिशत तक हो सकती है। अभी भी पिछले दशक में कृषि जगत में बढ़ती हुई लागत और कम होती हुई उत्पादकता और आय के दुष्चक्र ने दो लाख से अधिक किसानों को मौत के घाट उतारा है। जलवायु परिवर्तन से आई मानसून में अनियमितता से कई राज्य (उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, असम) जहाँ अकाल से पिछले कई वर्षों से प्रभावित होते रहे हैं, वहीं राजस्थान, महाराष्ट्र इत्यादि में अतिवृष्टि ने काफी तबाही मचाई है। आंध्रप्रदेश पहले अकाल और उसके तुरंत बाद बाढ़ की त्रासदी के चलते सर्वाधिक दुःखद उदाहरण रहा है। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव ही है कि बाढ़ से प्रभावित होने वाला राज्य असम इस वर्ष अकाल की घोषणा करने वाले शुरुआती राज्यों में से था।

जल

जल की गिरती हुई उपलब्धता न केवल कृषि बल्कि जीवन के सारे आयामों को प्रभावित कर रही है। भारत के 70 प्रतिशत भूजल का दोहन कृषि के लिए हो रहा है और उसमें से तक़रीबन 70 प्रतिशत सिर्फ धान की खेती के लिए होता है। खाद्य व कृषि संस्थान (FAO) का मत है कि पारंपरिक जलस्रोतों के पुनरुद्धार व बेहतर प्रबंधन और भूजल के संवर्द्धन से ही जलसुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। लेकिन हमारे देश में ऐसे प्रयास कम ही दृष्टिगोचर हैं। भूजल का स्तर और गुणवत्ता दोनों ही अधिकाधिक दोहन से प्रभावित हुई हैं। जिन राज्यों में 20–25 फीट पर पानी उपलब्ध था वहाँ अब जलस्तर 100 फीट से भी नीचे चला गया है। पंजाब व हरियाणा जैसे राज्यों में कृषि व उद्योग पूर्णतः भूजल के अत्यधिक दोहन पर आधारित हैं और स्थिति चिंताजनक है। कई राज्यों में इस वर्ष डीजल पर दी गई सब्सिडी में कमी की गई और कृषि के लिए पंपसेटों द्वारा व बिजली सिंचाई पर प्रतिबंध भी लगाया गया। इन राज्यों में पीने के पानी का संकट गहराता जा रहा है। पारंपरिक स्रोतों के प्रबंधन में भारी अनदेखी की गई है और नए मार्गों, कॉलोनियों व रेल-मार्ग के निर्माण ने स्रोतों के संवर्द्धन को अवरूद्ध किया है। पेयजल की समस्या गंभीर होती जा रही है और पानी की बंद बोतलों ने अब गाँवों में भी अपना साम्राज्य विस्तार किया है।

स्वास्थ्य

जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव यूँ तो अभी स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं हो पाया है लेकिन समुचित भोजन की कमी से गिरती हुई प्रतिरोधक क्षमता ने रोगों में भयंकर बढ़ोत्तरी की है। लगभग सभी राज्यों में बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की दशा पर कई आंकड़े उपलब्ध हैं। सरकार के न मानने के बावजूद भी कई राज्यों में ग़रीबी से उपजी भूख से मौतें हुई हैं और हो रही हैं। बाढ़ प्रभावित राज्यों के स्वास्थ्य की स्थिति प्रदूषित पानी द्वारा फैलने वाली बीमारियों की वजह से और भी गंभीर है। सूखे राज्यों में भी भूजल की गुणवत्ता गिरी है। कई राज्यों में पानी में आर्सेनिक की मात्रा स्वास्थ्य की दृष्टि से असह्य है। इसके अतिरिक्त अत्यंत गंभीर घटनाओं से हुई मौतों का अंदाज़ा सहज लगाया जा सकता है। हर वर्ष गर्मियों में लू से मरने वालों की गिनती व सर्दियों में ठण्ड से मरने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। धन व स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में इलाज न कराने से हुई मौतें सरकारी आंकड़ों से बाहर ही हैं।

पशुधन

पशुधन का भारत में कृषि, व्यवसाय व घर के कार्यों में बड़ा योगदान रहा है। बदलते हुए मौसम, कृषि में आई कमी का सीधा प्रभाव पशुधन पर पड़ा है। कम होती हुई चारागाह की भूमि और चारे के कम होते उत्पादन ने पशुधन को घर की शान की जगह किसानों की व्यथा बना दिया है। पशुओं को पर्याप्त रूप से चारा नहीं मिल पा रहा है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के इस्तेमाल से चारा भी ज़हरीला हो रहा है। बढ़ते तापमान ने पशुओं के स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया है। पशु अब प्रायः बीमार ही रहते हैं और कम आयु में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पशुधन से आय की कमी से किसानों पर दोहरी मार पड़ी है। किसान औने-पौने दाम पर पशुओं को बेचने के लिए मजबूर हैं। गाँवों में एक चौथाई जानवर भी नहीं बचे हैं।

महिलाएँ

जलवायु परिवर्तन के महिलाओं पर बहुआयामी प्रभाव हुए हैं। परिवारों में खेती, भोजन व जल, ऊर्जा व जलावन की ज़िम्मेदारी अधिकांशतः महिलाओं की ही है। खेती व पारिवारिक आय में कमी, भोजन, जल व ऊर्जा के स्रोतों में कमी की पूर्ति में महिलाओं की दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण भाग इनके पीछे दौड़ने में बीतता है। घरों से दूर होते हुए जल स्रोत महिलाओं के समय व श्रम के लिए बड़ी चुनौती पेश करते हैं। स्वास्थ्य की देखरेख में भी काफी समय बीतता है। पारिवारिक आय में कमी के कई सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक परिणाम महिलाओं पर ही परिलक्षित होते हैं। पलायन करने वाली महिलाओं की स्थिति और भी बदतर है। दुर्बल, एकल महिलाओं की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। जिन परिवारों में पुरुष वृद्ध महिलाओं को गाँवों में छोड़ मजदूरी को गए हैं, उनके लिए अन्य सभी समस्याओं के साथ सुरक्षा भी एक बड़ा मुद्दा है।

वनक्षेत्र, वानिकी व जैव विविधता

जलवायु परिवर्तन व उससे उत्पन्न प्रभावों से वनक्षेत्र, वानिकी व जैव विविधता में भयंकर ह्रास हुआ है। गाँवों से जंगल की दूरी बढ़ती गई है और उनकी अर्थव्यवस्था में जंगल/वनक्षेत्रों का योगदान न्यूनतम होता जा रहा है। वनाश्रित समुदायों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और वे पलायन को मजबूर हुए हैं। वनों से कई वानिकी व जैव प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं

और कई विलुप्त होने के कगार पर हैं। वनों में भोजन व जल की अनुपलब्धता के कारण गाँवों की तरफ भटके जानवरों ने लोगों को और लोगों ने जानवरों को परस्पर शिकार बनाया है। गाँवों में भी सियार, गीदड़, कई पशु-पक्षी व कीट गायब हो गए हैं। मृत जानवरों को खाने वाले पशु व कीट भी गायब हो रहे हैं।

गरीबी

जलवायु परिवर्तन से ग़रीबी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ऐसे समुदाय और लोग जो कि ग़रीबी रेखा से थोड़े ऊपर थे वह ग़रीबी रेखा के नीचे आ गए हैं। कृषि, खाद्य व जल सुरक्षा में कमी, कुपोषण और गिरती हुई प्रतिव्यक्ति आय से ग़रीब सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। गाँवों से शहरों की ओर पलायन काफी संख्या में बढ़ रहा है और जहाँ इसने शहरी मूलभूत सुविधाओं और संरचनाओं पर दबाव बढ़ाया है वहीं शहरी झुग्गियों में अप्रवासियों को नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर किया है। ऐसी आशंका है कि तटीय क्षेत्रों में समुद्रतल के बढ़ने पर पलायन काफी बढ़ेगा। भारत सरकार के अनुमान के अनुसार समुद्रतल में 1 मीटर की वृद्धि 70 लाख लोगों को पलायन पर मजबूर कर सकती है। बाढ़, सुखाड़, समुद्री आंधियों की पुनरावृत्ति भी पलायन में काफी वृद्धि कर सकती है। बांग्लादेश की संवेदनशील स्थिति को देखते हुए यह भी आशंका है कि बांग्लादेश से भारत में पलायन काफी बढ़ेगा।

गरमाहट की रफ्तार हर साल बढ़ रही है। पिछली सदी के आखिरी दो दशक पिछले 400 सालों में सबसे गर्म दर्ज किये गए। संभवतः ये लाखों वर्षों में सबसे गर्म दशक थे।

यूरोप में 48 डिग्री सेल्सियस तक चले गए तापमान और अगस्त माह में एक हफ्ते तक चली जबरदस्त लू में 35 हजार लोगों की जानें गईं।

तापमान बढ़ने के कारण हिमांचल क्षेत्र की 40 से अधिक ग्लेशियर झीलें फटने के कगार पर हैं।

जलवायु परिवर्तन को रोकने के अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक प्रयास

जलवायु परिवर्तन को रोकने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास करीब दो दशक पूर्व शुरू हो गए थे। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसम्बर 1988 में अंतरशासकीय दल (Intergovernmental Panel on Climate Change - IPCC) का गठन किया।

जलवायु परिवर्तन पर अंतरशासकीय दल (आईपीसीसी)

एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में यह अंतरशासकीय समूह (आईपीसीसी) पूरे विश्व में ग्रीन हाऊस गैसों के बढ़ते स्तर का आंकलन करती है और उस सूचना को अपनी रिपोर्टों के ज़रिये नीति-निर्धारकों को देती है। प्रथम आईपीसीसी आंकलन प्रतिवेदन 1990 में जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए नीतिगत ढ़ाँचा तैयार करने का सुझाव दिया गया था। 1995 में प्रकाशित आईपीसीसी के द्वित्तीय प्रतिवेदन ने 1997 में क्योटो संधि (प्रोटोकॉल) को अपनाने का मार्ग प्रशस्त किया था। आईपीसीसी के 2001 में प्रकाशित तृत्तीय प्रतिवेदन को वर्तमान में जलवायु परिवर्तन पर विचार-विमर्श के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ के रूप में देखा जाता है। आईपीसीसी के चौथे प्रतिवेदन (2007) ने कई ख़तरनाक तथ्य सामने लाए हैं, जैसे कि ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन से सदी के अंत तक पृथ्वी की जलवायु का तापमान 2–4.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है जिससे होने वाले बदलाव खाद्य व जल सुरक्षा को सर्वाधिक प्रभावित करेंगे। आईपीसीसी के प्रतिवेदन को इंटरनेट द्वारा www.ipcc.ch से हासिल किया जा सकता है।

यूएनएफसीसीसी

जून 1992 में रियो डी जेनेरियो में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन में आम सहमति से जलवायु परिवर्तन पर पहली बहुपक्षीय विधिक व्यवस्था UN Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) अर्थात् यूएनएफसीसीसी (संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन अभिसमय) को अंगीकार किया गया। यूएनएफसीसीसी यह स्वीकार करता है कि मानवजनित ग्रीन हाऊस गैसों के उच्च संकेंद्रण की ज़िम्मेदारी मुख्य रूप से औद्योगिक देशों की ही है। विकसित देशों के औद्योगीकरण

की अवधि के समरूप 1850 से 2000 तक की कालावधि में कार्बन डाई-ऑक्साइड के उत्सर्जन में अमरीका 30 प्रतिशत, यूरोपीय संघ के 25 देश 27.2 प्रतिशत, चीन 7.3 प्रतिशत और भारत कुल 2 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं। अतः इस सिद्धांत के अनुसार कि ''प्रदूषक ही भरेगा'', इस हानिकारक उत्सर्जन में कमी की ज़िम्मेदारी विकसित देशों पर दूसरों की तुलना में अधिक है। यूएनएफसीसीसी में विकासशील देशों से शमन के उपाय स्वयमेव अपनाने को नहीं कहा गया है।

विकसित देशों को ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जनों में कमी लाने को कहा गया है तो विकासशील देशों पर विकास के लिए पर्यावरण की दृष्टि से संपोषणीय रणनीतियाँ अपनाने का उत्तरदायित्व है। परंतु इस मामले में भी यूएनएफसीसीसी स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करता है कि विकासशील देश इन रणनीतियों को भी विकसित देशों के आर्थिक और तकनीकि सहयोग से ही अपना सकते हैं। विकासशील देश शमन के उपाय तभी अपना सकते हैं जब उस पर आने वाली अतिरिक्त लागत उन्हें उपलब्ध कराई जाए।

क्योटो संधि (प्रोटोकॉल)

1997 में विकसित देशों के लिए उत्सर्जन को कम करने के लक्ष्य निर्धारित किए गए। क्योटो संधि के नाम से प्रसिद्ध इस वार्ता में विकसित देशों ने 2012 तक अपने 1990 के उत्सर्जन स्तर से 5.2 प्रतिशत के सामूहिक औसत तक ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने का वचन दिया। इसके परिपालन व समीक्षा के लिए प्रावधान बनाए गए और इनका परिपालन करना सदस्य देशों के लिए कानूनी बाध्यता है। इस समग्र लक्ष्य को बाद में अलग-अलग देशों के राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में बदल दिया गया। 2012 तक की इस अवधि को क्योटो संधि के तहत प्रथम संकल्प अवधि के रूप में जाना जाता है। 2012 से शुरू होने वाली द्वित्तीय संकल्प अवधि में विकसित देशों के शमन संकल्पों के निर्धारण के लिए एक तदर्थ कार्यकारी समूह में वार्ता जारी है जिसकी सबसे महत्वपूर्ण बैठक दिसम्बर 2009 में कोपेनहेगन में होने जा रही है।

अमेरिका ने ग्रीन हाऊस गैसों के प्रमुख उत्सर्जक देश होने के बावजूद क्योटो संधि पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंगीकृत की गई सभी संधियों में एक बात काफी महत्वपूर्ण है कि विकासशील देशों के

लिए ऐसी कोई वैधानिक बाध्यता नहीं है कि उन्हें शमन लक्ष्यों को स्वीकार करना ही होगा, और न ही क्योटो संधि पर पुनः कोई वार्ता करनी है। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि यूएनएफसीसीसी और उसकी क्योटो संधि की विधिक वैधता 2012 के बाद भी कायम रहेगी।

बाली कार्य योजना (Bali Action Plan)

यूएनएफसीसीसी के पक्षकारों का सम्मेलन (Conference of Parties) जो 2007 में बाली में हुआ, उसमें भी यूएनएफसीसीसी में निहित सिद्धांतों और उसके लक्ष्यों की बैठक में मंजूर बाली कार्ययोजना में पूर्णतः पुनर्पुष्टि की गई। साथ ही बाली कार्ययोजना में एक व्यापक प्रक्रिया की बात कही गई है जो दिसम्बर 2009 में कोपेनहेगन में सम्पन्न होने वाले पक्षकारों के सम्मेलन के साथ समाप्त होगी। दीर्घकालीन सहकारी कार्यवाही के ज़रिये समझौते का पूर्व प्रभावी और स्थायी क्रियान्वयन इस प्रक्रिया का लक्ष्य है। बचे हुए दो वर्षों में दीर्घकालीन सहकारी कार्यवाही के लिए साझा दृष्टिकोण तैयार करने के बारे में गहन चर्चाऐं होंगी। ये चर्चाऐं चार परस्पर संबंधित स्तंभों पर निर्भर करेंगी –

- जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही
- अनुकूलन पर कार्यवाही
- तकनीकि विकास पर कार्यवाही और शमन तथा अनुकूलन की कार्यवाही में सहायता हेतु उसका हस्तांतरण; और
- तकनीकि सहयोग और शमन तथा अनुकूलन पर कार्यवाही में सहायता के लिए वित्तीय संसाधनों और निवेश के प्रावधान पर कार्यवाही

बाली समझौते का उद्देश्य विश्व को ऐसे कदम उठाने के लिए तैयार करना है जिससे जलवायु परिवर्तन का निमित्त बनने वाली ग्रीन हाऊस गैसों का वातावरण में उत्सर्जन कम हो सके। उत्सर्जन कम करने के साथ ही यह संधि सभी देशों को जलवायु परिवर्तन से होने वाले परिवर्तनों एवं ख़तरों से निपटने के लिए अपने को तैयार करने में मदद करती है। बाली समझौते की उपलब्धि यह रही कि बाली कार्यक्रम (बाली रोडमैप) के आधार पर 2009 तक नए समझौते की रूपरेखा तैयार हो सकी, जिसमें प्रत्येक देश से आयोजित कार्यों को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने के प्रयत्न किये गए।

बाली सम्मेलन के बाद विभिन्न देशों के बीच एक नई बहस ने जन्म लिया। वर्तमान में केवल उन समृद्ध देशों से ही कार्बन गैसों का उत्सर्जन कम करने की आशा की जाती है जो कुल प्रदूषण के 70 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार माने जाते हैं। परन्तु ये देश अब ये चाहते हैं कि 2012 के बाद भारत और चीन जैसे विकासशील देश (जहाँ अर्थव्यवस्था के विस्तार के साथ-साथ उत्सर्जन भी बढ़ रहा है) भी उत्सर्जन में कमी करें। इसका तात्पर्य है - मौजूदा संयुक्त राष्ट्र संधि में आमूल परिवर्तन।

पक्षकारों का कोपेनहेगन सम्मेलन (COP 15)

सदस्य राष्ट्रों की पंद्रहवी बैठक (COP 15) 7 से 18 दिसम्बर 2009 तक कोपेनहेगन (डेनमार्क) में आयोजित होना निश्चित है। यह काफी महत्वपूर्ण बैठक मानी जा रही है क्योंकि इसे अन्य कई पेचीदे पहलुओं के अलावा 2012 (जब क्योटो प्रोटोकॉल की अवधि समाप्त होगी) के बाद विकसित देशों के उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य पर बातचीत व लक्ष्य निर्धारण करना है। विश्व में ऐसी अपेक्षा है कि विकसित देश इस बैठक में अपने लक्ष्यों के मद्देनज़र अपनी प्रतिबद्धता घोषित करेंगे, जो कि अभी तक संभव नहीं हो सका है। आर्थिक संसाधन व तकनीक एवं सहयोग उपलब्ध कराने के विषयों पर भी गहन चर्चा व मनमुटाव की आशंका है। पिछली तकरीबन सभी बैठकों में मतैक्य का अभाव व विकसित देशों के कड़ियल रुख की वजह से बैठकों की असफलता के मद्देनज़र कोपेनहेगन की बैठक अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इस सदी में धरती का तापमान दो से छह डिग्री तक बढ़ने का अनुमान है। दो डिग्री की बढ़ोत्तरी भी धरती पर तबाही ला सकती है, अर्थात् -

- एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि यानि कई प्रजातियों के अस्तित्व पर संकट
- दो डिग्री सेल्सियस की वृद्धि का असर फसलों की पैदावार पर
- तीन से पाँच डिग्री सेल्सियस होने पर दुनिया की आधी से अधिक आबादी संक्रामक बीमारियों की चपेट में आ जाएगी
- जीव-जन्तुओं व वनस्पतियों की 20 फीसदी यानि 12,000 से अधिक प्रजातियों के खत्म होने की आशंका

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और समझौता वार्ता

जलवायु परिवर्तन पर प्रयासों की असफलता के लिए मुख्य ज़िम्मेदार विकसित देश रहे हैं। उत्सर्जित भंडार में न्यूनतम योगदान करने वाले विकासशील देशों पर उत्सर्जन में कमी करने की प्रतिबद्धता डालने पर उन पर दबाव तो बना ही है साथ ही विकसित देश में राजनैतिक इच्छाशक्ति में भयंकर कमी, राष्ट्रीय प्रयासों के अभाव और फ्रेमवर्क कन्वेंशन व क्योटो प्रोटोकॉल के प्रावधानों के खिलाफ़ उठाए गए कदमों ने अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को काफी कमजोर किया है। विकसित देश उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य की घोषणा करने में भी असफल रहे हैं। जहाँ बाली एक्शन प्लान ने विकसित राष्ट्रों को अपने उत्सर्जन में (1990 के आधार पर) 25—40 प्रतिशत तक की कमी का जनादेश दिया था, विकसित देशों ने उत्सर्जन में 10—15 प्रतिशत कमी लाने का संकेत दिया है। विकसित देशों का यह तर्क कि विकासशील देशों को भी अपने उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए बिल्कुल बेबुनियाद है और क्योटो प्रोटोकॉल में कहीं इसकी चर्चा नहीं है। हालांकि इसके बावजूद भी कई विकासशील देशों ने अपने राष्ट्रीय कानूनों से हरित ऊर्जा आधारित विकास व ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी पर प्रमुखता से ध्यान दिया है। ऐसे देशों में भारत, चीन, ब्राजील, दक्षिण कोरिया इत्यादि प्रमुख हैं जिन्होंने जलवायु परिवर्तन पर अपने राष्ट्रीय एक्शन प्लान की घोषणा भी की है।

अपने सतत विकास व ऊर्जा की मांग को ध्यान में रखते हुए ये देश उत्सर्जन में कमी के लिए लक्ष्य निर्धारण व घोषणा द्वारा प्रतिबद्ध नहीं होना चाहते हैं जो कि क्योटो प्रोटोकॉल के बिल्कुल अनुरूप है। विकसित देशों की यह भी मांग है कि उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग के लिए और बाजारी प्रावधान दिए जाऐं, हालांकि उत्सर्जन में कमी के लिए बाजारी प्रावधान के अनुभव हतोत्साहित करने वाले और छद्म ही प्रकट हुए हैं।

जलवायु परिवर्तन पर राजनीति का एक और महत्वपूर्ण पहलू विकासशील देशों में अनुकूलन व तकनीकि सहयोग है। विकासशील देशों को उत्सर्जन में कमी व अनुकूलन के लिए कम से कम एक बिलियन अमरीकी डॉलर प्रतिवर्ष का सहयोग चाहिए। विकसित देशों में यूरोपियन यूनियन के अलावा और कहीं से भी इसमें सहयोग के संकेत नहीं आए हैं। तकनीक, तकनीकि सहयोग और बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) पर प्रगति भी बातचीत व बैठक की सफलता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

जलवायु परिवर्तन पर विभिन्न देशों की प्रतिबद्धता

- अमरीका ने 2020 तक अपने उत्सर्जन में (1990 के मानक से) सिर्फ चार प्रतिशत कमी करने की मंशा ज़ाहिर की है।
- यूरोपियन यूनियन ने 2020 तक (1990 के मानक से) 20 प्रतिशत कमी की इच्छा ज़ाहिर की है और अन्य विकसित और विकासशील देशों द्वारा उत्साहक प्रयासों से 30 प्रतिशत कमी करने की सोच सकता है।
- ऑस्ट्रेलिया 2020 तक (2000 के मानक से) 25 प्रतिशत कमी करेगा। रूस ने 2020 तक (1990 के मानक से) 10–15 प्रतिशत कमी की बात कही है। यह काफी भ्रामक है क्योंकि सोवियत रूस के विघटन के बाद वहाँ उत्सर्जन में 30 प्रतिशत की गिरावट आई है।
- जापान 2020 तक (2005 के मानक से) 15 प्रतिशत कमी करेगा जो कि वास्तविक तौर पर (1990 के मानक से) सिर्फ 7 प्रतिशत कमी है।
- यूनाइटेड किंगडम 2020 तक (1990 के मानक से) 30 प्रतिशत कमी करेगा।
- विकसित देशों के घोषित लक्ष्य निर्धारित लक्ष्य (25–40 प्रतिशत) का आधा भी नहीं हैं।

अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं में भारत की स्थिति

भारत और अधिकांश विकासशील देशों का विश्वास है कि तेल और कोयले जैसे जीवाश्म ईंधनों के जलने से जो उत्सर्जन होता है, उसमें कमी करने से देश के आर्थक विकास में बाधा आएगी। भारत और अन्य अधिकांश विकासशील देशों का कहना है कि उन्हें उच्च कोटि की प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराए बिना यदि जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कटौती करने पर विवश होना पड़ा तो उससे उनको आर्थिक रूप से हानि उठानी पड़ेगी। यदि समृद्ध देश ही प्रदूषण के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी हैं तो उन्हें ही कटौती की ज़िम्मेदारी भी लेनी चाहिए। जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो वार्ताऐं चल रही हैं उनके बारे में भारत की स्थिति इस प्रकार है –

- भारत का यह मानना है कि हमारी वार्ताऐं क्योटो प्रोटोकॉल एवं उसके सिद्धांतों और लक्ष्यों के दायरे में ही आगे बढ़नी चाहिए।
- दीर्घकालीन सहकारी कार्यवाही हेतु साझा दृष्टिकोण और उपयुक्त चार स्तंभ एक–दूसरे से परस्पर जुड़े हुए और समाहित हैं। इन पर एक साथ ही कार्य होना चाहिए।
- हमें व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा और सार्वभौमिक क्षेत्रवार मानकों जैसे नए–नए विषयों को उठाकर वार्ता के मुख्य उद्देश्य से भटकने से बचना चाहिए। इनसे विकसित और विकासशील देशों का जो अंतर है वह धुंधला हो जाता है। क्योटो प्रोटोकॉल में विकसित देशों के लिए जो विधिक दायित्व तय किये गए हैं उनसे इस तरह की परिवर्ती बातों से छूट नहीं ली जा सकती।
- जलवायु परिवर्तन के प्रति एक ही दीर्घकालीन और समान दृष्टिकोण हो सकता है और वह यह कि प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन के बारे में सभी देश पूर्ण रूप से सहमत हों, ताकि कार्बन के उपलब्ध स्थान का सभी समान रूप से उपयोग कर सकें।

पिछले वर्ष जर्मनी में जी–5 और जी–8 देशों के संयुक्त शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा कि अपने विकासीय लक्ष्यों को हासिल करने के प्रयास में भारत यह सुनिश्चित करेगा कि प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन कभी भी विकसित

देशों के प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन की औसत दर से ज़्यादा न हो। इस प्रकार विकसित देश अपना उत्सर्जन कम करने में जितनी अधिक दिलचस्पी दिखाऐंगे, भारत के लिए लक्ष्य उतना ही कम होगा।

भारत ने यह भी सुझाव दिया है कि हमें एक ऐसी अभिनव वित्तीय व्यवस्था स्थापित करनी होगी जिससे जलवायु परिवर्तन के वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विकासशील देशों को अतिरिक्त धनराशि दी जा सके। एक प्रकार का वैश्विक जलवायु परिवर्तन जोख़िम कोष स्थापित किया जा सकता है जो विकासशील देशों को रियायती दरों और शर्तों पर जलवायु हितैषी प्रौद्योगिकी के लिए वित्तीय सहायता दे सके। यह कोष विकासशील देशों में वरीयता के आधार पर इकाईयों को अनुज्ञापित करने हेतु विकसित देशों में इन प्रौद्योगिकियों के बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) भी खरीद सकेगा।

भारत ने हमेशा एक न्यायसंगत समाधान की परिकल्पना की है। भारत इस प्रमेय को स्वीकार नहीं कर सकता कि विकसित देशों का कार्बन पर जो अधिकार है उसे वे अपने पास रख सकते हैं, क्योंकि वे वहाँ पहले से ही हैं, और हमारे जैसे अन्य देशों को विकास के निम्न स्तर से ही संतोष करना चाहिए क्योंकि हम वहाँ विलम्ब से पहुँचे हैं। जलवायु परिवर्तन के नाम पर अमीर और ग़रीब देशों के बीच स्थाई विभाजन नहीं होना चाहिए।

आर्कटिक की बर्फ तेजी से गायब हो रही है। संभावना है कि यह विराट हिमानी क्षेत्र सन् 2040 या इससे भी पहले की गर्मियों तक पूर्णतः हिमरहित हो जाएगा।

दुनिया भर के हिमनदों (ग्लेशियर) और हिम पर्वतों की बर्फ तेजी से पिघल रही है। उत्तरी गोलार्द्ध स्थित मोंटाना ग्लेशियर पार्क में 1910 में जहाँ 150 ग्लेशियर मौजूद थे, आज मात्र 27 बचे हैं।

पृथ्वी की कुल बर्फ का 91 प्रतिशत हिस्सा अपने पास रखने वाला अंटार्कटिक हिम क्षेत्र पिछले पाँच वर्षों में 3000 वर्ग कि.मी. सिकुड़ गया है।

जलवायु परिवर्तन पर भारत की तैयारी

जहाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को विकासशील देशों का नेता और एक प्रमुख घटक माना जा रहा है, राष्ट्रीय स्तर व स्थानीय स्तर पर स्थिति बिल्कुल इतर है। भारत ने जुलाई 2008 में राष्ट्रीय एक्शन प्लान की घोषणा की। यह संकेत दिए गए कि प्लान एक आधारभूत संरचना उपलब्ध कराएगा और आठ चिन्हित मिशन पर साल के अंत तक बहुपक्षीय बातचीत (राज्य सरकारें, विभिन्न मंत्रालय और अन्य हितभागी) के विमर्श से विस्तृत मिशन प्लान बनाए जाऐंगे। 2009 के अंत तक भी सिर्फ दो प्लान (जल और वनक्षेत्र) ही घोषित हुए हैं। प्रक्रिया बिल्कुल ही अपारदर्शी रही और प्लान के अवयवों पर जितनी कम बात की जाए उतना अच्छा है। अभी तक विभिन्न मंत्रालयों में आपसी संयोजन का घोर अभाव है। जहाँ राष्ट्रीय एक्शन प्लान स्वच्छ ऊर्जा विकास की बात करता है, वहीं नियोजन आयोग की एकीकृत ऊर्जा नीति (Integrated Energy Policy), 2005 कोयले को 2031–32 तक ऊर्जा का मुख्य स्रोत मानती है। वास्तविक स्थिति भी यह है कि गैर-पारंपरिक स्रोत से ऊर्जा उत्पादन की मौजूदा क्षमता में 20 प्रतिशत वृद्धि से भी हम कुल ऊर्जा की 5–7 प्रतिशत मांग ही पूरी कर सकते हैं। जल, वायु और सौर ऊर्जा की असीम संभावनाओं के बाद भी देश में इस पर समुचित प्रगति नहीं हुई है। देश में अभी आधी जनसंख्या के लिए ऊर्जा व बिजली उपलब्ध नहीं है। ऐसी परिस्थिति में त्वरित प्रयास अदृश्य हैं। राज्य स्तरों पर जलवायु परिवर्तन पर कोई चिंता नहीं है। देश में कृषि विश्वविद्यालयों में परिवर्तन के आधार पर बीजों इत्यादि में अनुकूलन पर कोई ठोस प्रयास नहीं हो रहे हैं। राज्य सरकारें अभी भी इस बहस का हिस्सा नहीं हैं।

अंतर्राष्ट्रीय बातचीत में भारत प्रति व्यक्ति उत्सर्जन व खपत में न्याय व समता की बात करता है लेकिन यही सिद्धांत देश में लागू नहीं होते। ज़्यादातर ऊर्जा व्यवसाय व उद्योगों के लिए है न कि सुदूर प्रांतों में ग्रामीणों और किसानों के लिए। ऐसे क्षेत्रों में ऊर्जा की कमी से मानव जीवन अभी भी एक दशक पीछे है। भारत सरकार आर्थिक व तकनीकि सहयोग की अनुपस्थिति में कुछ भी प्रयास करने को राजी नहीं दिखती। यह भी बहस का मुद्दा है कि भारत को ज्यादा आर्थिक संसाधन की आवश्यकता है या राजनैतिक इच्छाशक्ति की।

वास्तविक स्थिति यह है कि भारत की जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय बातचीत व राजनीति में ज्यादा रुचि है न कि राष्ट्रीय प्रयासों में। शायद हम सभी समझते हैं कि जलवायु परिवर्तन की चुनौती के लिए अंतर्राष्ट्रीय विवाद में अंक बनाने से अधिक अन्य बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन न सिर्फ़ हमारे पर्यावरण बल्कि वृद्धि एवं विकास के लिए भी एक ख़तरा है। वर्तमान मूल्यांकन से यही पता चला है कि इससे उत्पन्न होने वाले ख़तरे को कम करने के ख़र्च की तुलना में जलवायु परिवर्तन से मानव कल्याण को होने वाले नुक़सान ज़्यादा हैं। इन उपायों की विकास लागत कम हो सकती है, बशर्ते हम जल्द से जल्द कदम उठाऐं। अपनी विकास नीति बनाते समय हमें कार्बन के प्रभाव के प्रति सजग एवं इससे प्रभावित दुनिया को भी ध्यान में रखना होगा। इसलिये यह हमारे हित में है कि हम एक ठोस अनुकूल एजेंडा तैयार करें। सामान्य नीति से हटकर इसके लिये विशेष योजना बनाने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन की वास्तविकत चुनौती यही है कि हम जलवायु से संबंधित ख़तरों को विकास संबंधी नीतियों एवं कार्यक्रमों में शामिल करें। वैश्विक स्तर पर यह चुनौती है कि हम ऐसे समझौते करें जो ज़िम्मेवारियों के निर्धारण के मामले में निष्पक्ष हों और उनके समंजन की मांग की तुलना में पर्याप्त ठोस एवं गंभीर हों।

इस सदी के अंत तक समुद्रों का जलस्तर 7 से 23 इंच (18 से 59 से.मी.) तक बढ़ सकता है। इससे दक्षिणपूर्व एशिया का विस्तृत भू-भाग जलमग्न हो जाएगा।

समुद्र में अम्लता बढ़ने के कारण 10 लाख से अधिक प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा है। कृषि की उत्पादकता घटेगी, भूख व खाद्य असुरक्षा बढ़ेगी। मलेरिया, डेंगू, हैजा व अन्य बीमारियाँ फैलेंगी।

समुद्र का जल स्तर बढ़ने से तटीय शहर व द्वीप जलमग्न हो जाऐंगे। भूमिगत जल क्षारीय होने लगेगा, जिससे पीने योग्य पानी की उपलब्धता क्रमशः कम होती जाएगी।

नीति-निर्धारकों से हमारी अपेक्षाऐं

जलवायु परिवर्तन की बहस और प्रयासों को आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय न्याय की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। नीति-निर्माण में वांछित राष्ट्रीय उद्देश्यों में छोटे किसान, खेतिहर मज़दूर, मछुआरा समुदाय और महिलाओं व दलितों के हितों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इन समुदायों के पास अत्यंत सीमित संसाधन होने के कारण जलवायु परिवर्तन के प्रति इनका अनुकूलन बेहद कमज़ोर है। महिलाऐं कृषि व आर्थिक संसाधनों की कमी, खाद्यान्न व जल की कमी व परिवार के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारणों से बेहद पीड़ित हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पौल्यूटर पेस सिद्धांत को मजबूती से रखने की आवश्यकता है, जिससे धनी व विकसित देशों के ऐतिहासिक उत्सर्जन के मद्देनज़र आर्थिक व तकनीकि सहयोग पर बल दिया जा सके। बाली एक्शन प्लान के तहत दिए गए 25—40 प्रतिशत की कटौती पर कोई छूट नहीं होनी चाहिए। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय बातचीत के कुछ मुख्य पहलुओं पर हमारी स्थिति स्पष्ट होनी चाहिए। जैसे :

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर

- **ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में 25-40 प्रतिशत की कमी :** एनेक्स 1 देशों में ग्रीनहाउस उत्सर्जन में 2020 तक 40 प्रतिशत और 2050 तक 20 प्रतिशत की कमी होनी चाहिए। यह कमी कार्बन क्रेडिट की खरीद से दिखाई गई कमी के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर उत्सर्जन में लाई गई कमी से हो।
- **कॉप 15 की बातचीत में कृषि को प्रमुखता :** कॉप 15 की बैठक में 2012 के बाद लाए जाने वाले बदलावों की भी चर्चा होगी। विकासशील व कृषिप्रधान देशों में जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि कृषि व अनुकूलन पर विस्तार से बहस हो। सभी विकसित देश कृषि पर बातचीत से बचना चाहते हैं और इस पर जलवायु परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का दोष मढ़ते हैं। हालांकि दूसरी ओर यह सत्य है कि कृषि व वानिकी ही ऐसा एकमात्र उद्योग है जो कि उत्सर्जन में कमी और उत्सर्जित भंडार में कमी लाने में सक्षम है।
- **कार्बन क्रेडिट खरीद से उत्सर्जन में कमी :** उत्सर्जन में कमी लाने में एक तिहाई कार्बन क्रेडिट की खरीद से धनी देश पैसे के बलबूते पर अपनी

सुविधाभोगी जीवनशैली को जारी रखना चाहते हैं। इस पर रोक लगनी चाहिए। विकासशील देशों को यह मांग करनी चाहिए कि कार्बन क्रेडिट द्वारा खरीदी गई उत्सर्जन में कमी उनके कुल उत्सर्जन में लाई गई कमी की एक तिहाई से ज्यादा न हो और किसी तरह की बाजारी व्यवस्था लाने का भी विरोध होना चाहिए।

- **विकासशील देशों को आर्थिक व तकनीकि सहयोग पर स्पष्ट प्रतिबद्धता :** अनुकूलन निधि में से एक निश्चित राशि कृषि के लिए नियत करनी चाहिए। विकासशील व अल्पविकसित देशों को आर्थिक व तकनीकि सहयोग पर विकसित देशों को अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट करनी चाहिए और इसकी समयावधि भी निर्धारित करनी चाहिए।

राष्ट्रीय स्तर पर

- **कम कार्बन खपत पर आधारित विकास की रूपरेखा :** वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर शोध व निवेश की अत्यंत आवश्यकता है। भारत में सौर व जल ऊर्जा की असीमित संभावनाओं के प्रकाश में इन पर त्वरित प्रगति होनी चाहिए। उपलब्ध ऊर्जा की आर्थिक व पर्यावरणीय न्याय की दृष्टि से खपत होनी चाहिए और ऐसे समुदायों को, जिन तक ऊर्जा की पहुँच नहीं है, बड़े उद्योगों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- **जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय एक्शन प्लान पर प्रगति :** जलवायु परिवर्तन पर उद्देश्य, माध्यम व संसाधनों बारे में अतिशीघ्र स्पष्टता लानी चाहिए। राज्य सरकारों को भी इस बहस, नीति-निर्माण व प्रयासों का भागीदार बनाना चाहिए।
- **अति संवेदनशील जनसंख्या समुदाय के हितों की रक्षा :** जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक पीड़ित ग़रीब हैं। छोटे व सीमांत किसान, खेतिहर मज़दूर, मछुआरे, दलित व अनुसूचित जनजाति और इन सभी वर्गों की महिलाऐं सर्वाधिक पीड़ित हैं। अनुकूलन की रणनीति में इनके हितों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- **कृषि में अनुकूलन पर त्वरित प्रयास :** भारत में समेकित विकास बहुत हद तक कृषि पर निर्भर है। अतः कृषि में अनुकूलन को प्राथमिकता देना अत्यंत आवश्यक है। खेती सफल होने से कृषक व जनसंख्या के बड़े भाग की अनुकूलन की क्षमता स्वतः सुनिश्चित होगी।

lkjoh
th&30] iFke ry] yktir uxj&3
ub fnYyh&110024
njHkk"k % 011-29841266, 65151897
bey % pairvidelhi@rediffmail.com
oclkbV % www.pairvi.org

fldkbfMdku
Lojkt] ,Q 159-160] lhrkijk vkS|kfxd {k=
Tk;ij&302022]jktLFkku
njHkk"k % 0141-2771488
bey % cecoedecon@gmail.com
oclkbV % www.cecoedecon.org